15

षड् आवश्यक : एक वैज्ञानिक विश्लेषण

याकिनी महत्तरासुनु भगवान हरिभद्रसूरिजी महाराज ने " योगविंशिका " की प्रथम गाथा में कहा है कि " *मोक्खेण जोयणाओ जोगो* " जो प्रक्रिया आत्मा को मोक्ष के साथ जोड़े उसीको योग कहा जाता है ।[1] त्रिशलानंदन काश्यपगोत्रीय श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी ने सर्व जीवों के हित के लिये अनेक प्रकार की यौगिक प्रक्रियाओं का निरूपण किया है । उसमें छः आवश्यक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है । जैनदर्शन की एक विशेषता यही है कि उसकी कोई भी क्रिया पूर्णतः सप्रयोजन, सहेतुक व वैज्ञानिक होती है और उसमें आत्मा को कर्म से मुक्त करके मोक्ष देने की अचिन्त्य शक्ति होती है ।

छः आवश्यक साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओं के लिये एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है । यही छः आवश्यक प्रतिक्रमण में आते हैं और प्रतिक्रमण की यही विशिष्ट विधि श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी के समय से चली आती है ।[2] प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ प्रभु व अंतिम तीर्थंकर श्री महावीरस्वामी के समय में देवसि, राई, पक्खी, चौमासी एवं सांवत्सरिक ऐसे पाँच प्रकार के प्रतिक्रमण है । जबकि श्री अजितनाथ आदि बाईस तीर्थंकरों के समय में सिर्फ देवसि और राई दो ही प्रकार के प्रतिक्रमण थे ।[3] अर्थात् उनके समय में भी छः आवश्यक तो थे ही ।

छः आवश्यक में प्रतिक्रमण सबसे महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है क्योंकि उसमें सभी आवश्यक का समावेश होता है । इस विधि मूल सूत्र द्वादशांगी के रचयिता, तीर्थंकर परमात्मा के मुख्य शिष्य गणधरों ने रचे हैं ऐसी एक मान्यता परंपरा से चली आती है ।[4] गणधर भगवंतों ने द्वादशांगी की रचना अर्धमागधी भाषा में की थी और उसके उद्‌गम स्वरूप उपदेश चरम तीर्थंकर श्री महावीरस्वामी ने अर्धमागधी भाषा में ही दिया था । श्री महावीरस्वामी ने उपदेश के लिये समग्र भारतवर्ष में प्रचलित व प्रयुक्त विभिन्न व विद्वद्‌मान्य संस्कृत भाषा को छोडकर अर्धमागधी भाषा को क्यों पसंद किया ? उसके प्रत्युत्तर में सामान्यतः ऐसा कहा जाता है कि लोग अच्छी तरह समझ सकें इस लिये प्रभु ने लोकभाषा स्वरूप अर्धमागधी भाषा में उपदेश दिया किन्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह बात पूर्णतः सही नहीं है क्योंकि प्रत्येक तीर्थंकर परमात्मा की वाणी
एक अतिशय विशिष्टता यह है कि प्रभु की वाणी को कोई भी मनुष्य, स
व पुरुष अपनी अपनी भाषा में समझ सकता है, इतना ही नहीं अपितु प
पक्षी आदि तिर्यंच भी प्रभु की वाणी को अपनी अपनी भाषा में समझ स
हैं ।[5] श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी के समय में समग्र भारतवर्ष
विभिन्न लोकभाषाएँ प्रचलित थी । उसमें से अर्धमागधी में ही उपदेश
का व गणधरों द्वारा उसी भाषा में ही सूत्र रचना करने का मुख्य का
वैज्ञानिक है ।

इस प्रकार छः आवश्यक करने की योग्यता अल्प कषायता और उस
प्रयोजन राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, आदि कषायों के परिणाम
करने का है । उसमें वाणी व वाणी में प्रयुक्त शब्द और वर्ण एक महत्त्व
कारण है । क्रोधादि कषाय से अभिभूत मनुष्य की वाणी अत्यंत कठोर
कर्कश होती है । जबकि छः आवश्यक द्वारा कषायजय करने को तत्पर
मनुष्य की वाणी अत्यंत मृदु व कोमल होनी चाहिये ।

ध्वनि/शब्द भी पौद्गलिक अर्थात् पुद्गल द्रव्य के सूक्ष्म अंश स्व
परमाणु से निष्पन्न है और वर्ण, गंध, रस, स्पर्श पुद्गल द्रव्य का लक्षण
अतः प्रत्येक शब्द या ध्वनि में वे होते ही हैं । किन्तु मृदु व कोमल स्पर्श
ध्वनि में शुभ वर्ण, गंध, रस व स्पर्श होते हैं । अशुभ वर्ण आदि युक्त ध्व
और शब्द उसका प्रयोग करने वालें तथा उसको सुनने वालों के मन
अशुभभाव पैदा करते हैं । परिणामतः प्रयोक्ता व श्रोता दोनों अशुभ कर्म
करते हैं । जबकि छः आवश्यक की परम पवित्र क्रिया मुख्य रूप से
अशुभ दोनों प्रकार के कर्मों का क्षय करने के लिये की जाती है । अतः
क्रिया करने वाला कदाचित् कर्मनिर्जरा न कर पाये तो भी अशुभ कर्म
बंध नहीं होना चाहिये ऐसे पारमार्थिक प्रयोजन से गणधरों ने, स्वयं संस्
भाषा के प्रकांड पंडित और चौदह विद्या के पारगामी होने के बावजूद
आगम-द्वादशांगी और आवश्यक सूत्र को अर्धमागधी भाषा में सूत्रबद्ध कि

संस्कृतभाषा और संस्कृतभाषा से निष्पन्न भारतीय भाषाओं
सामान्यतया 12 या 14 स्वर और 33 व्यंजन आते हैं । किन्तु सभी भाषा
में इन सभी स्वर और व्यंजनों का प्रयोग नहीं होता है । उसमें से
भाषाओं में और खास तौर पर अर्धमागधी भाषा में अत्यंत कठोर व कर्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वर-व्यंजन, संयुक्ताक्षरों का प्रयोग नहीं होता है । अर्धमागधी भाषा में शब्द अत्यंत मृदु व कोमल होते हैं । इन शब्दों की ध्वनि भी प्रयोक्ता और श्रोता के मन/अध्यवसाय में अनोखा परिवर्तन करने में समर्थ होती है । अध्यवसाय के शुद्धिकरण से हमारे आभामंडल का भी शुद्धिकरण होता है और उसके द्वारा शारीरिक, मानसिक, भौतिक व आध्यात्मिक उन्नति होती है । अतएव हमारे आगम व सूत्रों को अपने पूर्वकालीन आचार्य/महापुरुष मंत्रस्वरूप मानते थे । जैसे विद्या या मंत्र का अर्थ बिना जाने भी उसी विद्या या मंत्र का पाठ या जाप करने से इष्ट कार्यसिद्धि होती है वैसे ही सूत्रों के अर्थ बिना जाने भी मूल शब्दों का श्रवण भी प्रयोक्ता और श्रोता दोनों का कल्याण करता है । अतएव पर्युषणा पर्व में अंतिम दिन श्री कल्पसूत्र मूल अर्थात् श्री बारसा सूत्र का साद्यंत श्रवण किया जाता है और उसमें भी प्रत्येक साधु साध्वी के लिये इसी बारसा सूत्र का श्रवण अत्यावश्यक माना जाता है ।

" *नमो अरिहंताणं* " का उच्चारण करते समय जो भाव आते हैं वे भाव कभी भी अरिहंत परमात्मा को नमस्कार हो का उच्चारणण करते समय नहीं आयेगा । नमस्कार महामंत्र आदि प्रतिक्रमण के सभी सूत्र मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति के महान साधन है । अमरिका में जो जैन नहीं है वैसे बहुत से अमरिकन मानसिक शांति के लिये नमस्कार महामंत्र इत्यादि का उच्चारणणपूर्वक जाप करते हैं और मानसिक शांति प्राप्त करते हैं ।

नौ साल पहले इंग्लैण्ड की सुप्रसिद्ध प्रकाशन संस्था Themes Hudson द्वारा प्रकाशित किताब "Yantra" मेरे पढने में आयी । उसमें उसके लेखक श्री मधु खन्ना ने बताया है कि रोनॉल्ड नामेथ (Ronald Nameth) नामक विज्ञानी ने ब्राह्मणों के " श्रीसुक्त " के ध्वनि को Tonoscope नामक यंत्र में से प्रसारित करने पर उसके स्क्रीन पर श्रीयंत्र की आकृति प्राप्त होती है । [7] यदि श्रीसुक्त के स्थान पर उसके अर्थ के ध्वनि को या श्रीसुक्त के शब्दों के क्रम में परिवर्तन करके उसके ध्वनि को इसी यंत्र में से पसार करने पर क्या श्रीयंत्र की आकृति प्राप्त हो सकेगी ? अर्थात् श्री द्वादशांगी के रचयिता चौदह पूर्वधर गणधर भगवंतों ने जो सूत्र रचना की है वह पूर्णतः वैज्ञानिक है और सर्व जीवों का हित करने वाली मंत्रस्वरूप है । अतएव कदाचित् नमस्कार महामंत्र के मूल स्वरूप को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमोऽर्हत् सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः स्वरूप संस्कृत में संक्षेप करने वाले प्रकांड तार्किक व कवि श्रीसिद्धसेन दिवाकर को उनके गुरु श्री वृद्धवादिसूरिजी ने आगमसूत्रों को संस्कृत में रूपांतरित करने का विचार करने के लिये कठिन प्रायश्चित्त देकर थोड़े समय के लिये संघ बाहर निकाल दिया था ।

इन बातों से पता चलता है कि प्रतिक्रमण के सूत्रों में कोई भी परिवर्तन करना उसके महत्त्व व उसी के प्रभाव का नाश करने वाला होता है । खुद तीर्थंकर परमात्मा भी दीक्षा के समय *" करेमि भंते "* सूत्र का पाठ करते हैं किन्तु उसके अर्थ का उच्चारण नहीं करते हैं और उसी प्रकार मूल सूत्र का आदर करते हैं ।

यहाँ सिर्फ मूल शब्दों का ही महत्त्व बताया है किन्तु शास्त्रकारों ने तो मूल शब्दों के साथ-साथ उसके अर्थ को भी इतना महत्त्व दिया है क्योंकि बिना अर्थ के भावशुद्धि - अध्यवसायशुद्धि सहजता से नहीं हो पाती है । अतएव शास्त्रकारों ने व्यंजन, अर्थ और तदुभय अर्थात् व्यंजन और अर्थ दोनों का ज्ञानाचार में समावेश किया है ।[9]

संवत्सरी प्रतिक्रमण अर्थात् पर्युषणा की आराधना श्रमण भगवान श्री महावीर के समय से अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है । हालाँकि इसी प्रतिक्रमण की विधि में प्रति शताब्दि या संप्रदाय भेद से थोडी सी भिन्नता हुई है । इस विधि में प्रायश्चित्त व कर्म क्षय के कायोत्सर्ग, स्तवन, सज्झाय, (स्वाध्याय) नित्य क्रम में आने के कारण प्रतिक्रमण की विधि के साथ जोड़ दिया गया हैं । इतना भाग प्रक्षिप्त है किन्तु मूलविधि में से कुछ भी कम नहीं किया गया है । श्री कल्पसूत्र (बारसासूत्र) में सामाचारी में श्री भद्रबाहुस्वामी ने स्वयं कहा है कि जिस प्रकार तीर्थंकर परमात्मा ने चातुर्मास के पचासवें दिन पर्युषणा की आराधना की थी उसी प्रकार गणधर भगवंतों ने भी चातुर्मास के पचासवें दिन पर्युषणा किया । उसी प्रकार स्थविर मुनियों ने भी पर्युषणा किया । ठीक उसी प्रकार हम आचार्य, उपाध्याय आज भी चातुर्मास के पचासवें दिन पर्युषणा करते हैं किन्तु भाद्र. शुक्ल चतुर्थी या पंचमी का उल्लंघन नहीं करना चाहिये ।

> जहा णं समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइ राए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ, तहा णं गणहरावि वासाणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सवीसइ राए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसविंति । जहा णं गणहरावि वासाणं सवीसइ राए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसविंति तहा णं गणहरसीसावि वासाणं जाव पज्जोसविंति । जहा णं गणहरसीसावि वासाणं सवीसइ राए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसविंति तहा णं थेरावि वासाणं जाव पज्जोसविंति । जहा णं थेरावि वासाणं सवीसइ राए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसविंति तहा णं जे इमे अज्जत्ताए समणे निग्गंथा विहरंति एएवि य णं वासाणं जाव पज्जोसविंति । जहा णं जे इमे अज्जत्ताए समणे निग्गंथा वासाण जाव पज्जोसविंति, तहा णं अम्हं पि आयरिया उवज्झाया वासाणं जाव पज्जोसविंति । जहा णं अम्हं पि आयरिया उवज्झाया वासाणं जाव पज्जोसविंति तहा णं अम्हे वि सवीसइ राए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेमो । अंतरावि य से कप्पइ पज्जोसवित्तए । नो से कप्पइ तं रयणिं उवाइणावित्तए ।

[कल्पसूत्र सामाचारी सूत्र-३, ४, ५, ६, ७, ८]

पर्युषणा अर्थात् सांवत्सरिक वार्षिक प्रतिक्रमण अर्थात् अपनी सांवत्सरिक प्रतिक्रमण की विधि श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी के समय से चली आती है । प्रतिक्रमण की विधि में कुछ सूत्र बार बार आते हैं । अतः विधि व उसके प्रयोजन संबंधित रहस्य से अज्ञात आराधकों के मन में प्रश्न पैदा होता है कि यही सूत्र तो पहले आ गया है तो यहाँ वह पुनः क्यों रखना चाहिये ? वास्तव में किसी भी शब्द या सूत्र का जब हम फिर से प्रयोग करते हैं तब पूर्व का जो संदर्भ था उससे भिन्न संदर्भ यहाँ होता है । उसी कारण से जितनी बार उसी शब्द या सूत्र का प्रयोग होता है उतनी बार उसकी भिन्न भिन्न विभावना (Concept) व तात्पर्य होता है । उदा. धर्म शब्द के विभिन्न अर्थ है । अतः यह स्वाभाविक है कि भिन्न भिन्न वाक्य या प्रसंग के संदर्भ में उसके भिन्न भिन्न अर्थ होते हों । तथापि एक ही अर्थ में एक ही ग्रंथ में विभिन्न स्थान पर प्रयुक्त धर्म शब्द की विभावना सभी स्थान पर समान नहीं होती है । उसमें भी थोड़ी थोड़ी भिन्नता होती ही है । उसी प्रकार सामायिक, प्रतिक्रमण आदि की विधि में विभिन्न स्थान पर प्रयुक्त एक ही सूत्र की विभिन्न स्थान के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदर्भ में विभिन्न विभावना, अर्थ व प्रयोजन होते हैं । अतः वही सूत्र पहले आ गया होने पर भी, उसी स्थान पर उसका विशेष महत्त्व होता है ।

प्रतिक्रमण आदि विधि में *"सुगुरु वांदणा"* वंदनक सूत्र हमेशा दो दो बार आता है । उसके बारे में सभी को प्रश्न होता है किन्तु *"वांदणां"* सूत्र गुरु भगवंत के प्रति अपने विय की अभिव्यक्ति के लिये है और गुरुदेव अपने सब के नजदीक के उपकारी है क्योंकि उन्होंने प्रभु की वाणी को अपने तक पहुँचाकर देव-गुरु व धर्म का तात्त्विक स्वरूप हमें समझाया है । अतः गुरु के प्रति अत्यंत पूज्यभाव बताने के लिये *"वांदणा"* सूत्र दो बार बोला जाता है ।

सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदनक, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान इन छः आवश्यकों का क्रम भी बहुत विचारपूर्वक रखा गया है । राग-द्वेष के परिणाम बिना सम-शिथिल किये श्री जिनेश्वर प्रभु या श्री जिनेश्वर प्रभु द्वारा प्ररूपित धर्म या तत्त्वों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती है । अतः राग-द्वेष के परिणाम को सम करने के लिये *"सामायिक"* आवश्यक सर्व प्रथम कहा है । शास्त्रों में सम्यक्त्व को भी सामायिक कहा है ।

सम्यक्त्व की प्राप्ति के बाद प्रभु व प्रभु के वचन के प्रति श्रद्धा, अहोभाव व पूज्यभाव पैदा होता है । परिणामतः उनके प्रति सहजता से नमस्कार हो जाता है । अतः सामायिक के बाद तुरंत *चतुर्विंशतिस्तव* रखा है ।

तीर्थंकर परमात्मा के बाद तुरंत गुरु का स्थान है । अतः उनके प्रति विन.-भक्ति-बहुमान व्यक्त करने के लिये वंदनक आवश्यक रखा हैं तथा पाप से पीछेहठ करने की प्रक्रिया स्वरूप प्रतिक्रमण हमेशा गुरु की समक्ष, गुरु की साक्षी में करना होता है । अतः इस क्रिया के पूर्व अवश्य वंदन करना चाहिये । अतः प्रतिक्रमण के पूर्व *"वंदनक"* आवश्यक रखा है ।

प्रतिक्रमण आवश्यक में गुरु की समक्ष भूतकाल में किये गये पापों को अपराध स्वरूप में स्वीकार के पश्चात् गुरु भगवंत उन पापों के प्रायश्चित्त के रूप में तप, जप, क्रिया, अनुष्ठान करने को कहते हैं । उसके प्रतीक स्वरूप दैनिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक या सांवत्सरिक प्रायश्चित्त के रूप में अनुक्रम से पचास श्वासोच्छ्वास प्रमाण दो लोगस्स, तीनसौ श्वासोच्छ्वास प्रमाण बारह लोगस्स, पाँचसौ श्वासोच्छ्वास प्रमाण बीस लोगस्स और एक हजार आठ श्वासोच्छ्वास प्रमाण चालीस लोगस्स व एक नवकार का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायोत्सर्ग किया जाता है । ध्यानस्वरूप आभ्यंतर तप अग्नि समान है, उससे पाप क्रम जलकर भस्म हो जाते हैं । किन्तु कायोत्सर्ग उससे भी बढिया स्थिति पैदा करता है । कायोत्सर्ग सर्व प्रकार के बाह्य-आभ्यंतर तप में सबसे श्रेष्ठ है क्योंकि कायोत्सर्ग से आत्मा का शरीर से संबंध छूट जाता है । ऐसी उत्कृष्ट स्थिति का निर्माण बिना कायोत्सर्ग संभव नहीं है ।

भूतकाल में हुए पापों का मिथ्यादुष्कृत देकर उसके लिये प्रायश्चित्त स्वरूप में कायोत्सर्ग रूप आभ्यंतर तप करने के पश्चात् वह पाप भविष्य में पुनः न हो उसके लिये प्रत्याख्यान करना आवश्यक है । अतः सबके अन्त में *प्रत्याख्यान* आवश्यक रखा है ।

इस प्रकार छः आवश्यक का क्रम भी पूर्णतः वैज्ञानिक है और आत्मा के गुणों को उसी क्रम से प्राप्ति कराने वाला है ।

इन छः आवश्यकों की क्रिया मन, वचन, काया की एकाग्रता त्रिकरणशुद्धि और शुद्धभावपूर्वक की जाए तो याकिनीमहत्तरासुनु भगवान श्री हरिभद्रसूरिजी महाराज के कथन अनुसार वह आत्मा को मोक्ष के साथ जोड़नेवाली होने से योगस्वरूप/ध्यानस्वरूप बनती है । अतः सभी श्रद्धालु श्रावकों को पूर्ण भक्ति, बहुमान व श्रद्धा से छः आवश्यकों की क्रिया करनी चाहिये ।

अन्त में, छः आवश्यकों के बारे में परम पवित्र गीतार्थ शास्त्रकार भगवंत के आशयविरुद्ध या जिनाज्ञाविरुद्ध कुछ भी लिखा गया हो तो मिच्छा मि दुक्कडं देकर पूर्ण करता हूँ ।

संदर्भः

1. 'योगविंशिका' गाथा-1, कर्ताः याकिनीमहत्तरासुनु श्रीहरिभद्रसूरिजी महाराज

2. श्रीकल्पसूत्र टीका, प्रथम व्याख्यान, मूळ : श्रीभद्रबाहुस्वामीजी, टीकाकार : उपा. श्रीविनयविजयजी

3. वही

4. तृतीय आगम स्थानांगसूत्र ममें अंगबाह्यश्रुत के आवश्यक और आवश्यकव्यतिरिक्त ऐसे दो भेद बताकर आवश्यक को गणधरकृत और आवश्यकव्यतिरिक्त को स्थविरकृत बताया है ।

5. तिरि, भर, सुरसमुदाय के अचिराना नंद रे,
एक योजनमांहे समाय के अचिराना नंद रे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेहने प्रभुजीनी वाणी के अचिराना नंद रे,
परिणमे समजे भवि प्राणी के अचिराना नंद रे.

श्रीशांतिनाथजिनस्तवन, रचयिता : प. श्रीपद्मविजयजी महाराज

6. * जैनदर्शननां वैज्ञानिक रहस्यो ले. मुनि नंदीघोषविजयजी पृ. 89

** सद्दंधयार उज्जोअ, ... नवतत्त्व गाथा-11

*** स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्तः पुदगलाः ।। 28।। तत्त्वार्थसूत्र अध्याय-5, सूत्र-28

7. जैनदर्शननां वैज्ञानिक रहस्यो ले. मुनि नंदीघोषविजयजी 'मंत्र, यंत्र अने ध्वनि : एक वैज्ञानिक विश्लेषण' पृ.188

8. *जैनदर्शननां वैज्ञानिक रहस्यो" ले. मुनि नंदीघोषविजयजी 'मंत्र, यंत्र अने ध्वनि : एक वैज्ञानिक विश्लेषण' पृ.191

** 'Yantra' by Madhu Khanna, p. 116

9. श्रीकल्पसूत्र टीका, व्याख्यान-5 मूळ : श्रीभद्रबाहुस्वामीजी, टीकाकार : उपा. श्रीविनयविजयजी

10. वंजन अत्थ तदुभये..... नाणंमि सूत्र, गाथा-2

11. श्रीकल्पसूत्र मूळ, सामाचारी, सूत्र न.- 3थी 8

To the enlightenedman...whose consciousness embraces the universe to him the universe becomes his 'body', while his physical body becomes a manifestation of the Universal Mind, his inner vision and expression of the highest reality, and his speech an expression of eternal truth and mantric power.
Lame Anagarika Govind, Foundations of Tibetan Mysticism p.225

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org